INTERNATIONAL RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND INTERDISCIPLINARY STUDIES
(Peer-reviewed, Refereed, Indexed & Open Access Journal)
DOI : 03.2021-11278686 ISSN : 2582-8568 IMPACT FACTOR : 8.428 (SJIF 2026)

हिंदी कविता में चित्रित आदिवासी पीड़ा : दृश्य माध्यमों पर प्रभाव

(Depiction of Tribal suffering in Hindi Poetry and its impact on Visual media)

डॉ. शर्मिलाबहन सुमंतराय पटेल

एसोसिएट प्रोफेसर,
हिंदी विभागाध्यक्ष एवं पी.जी. इन्चार्ज.
श्रीरंग नवचेतन महिला आर्ट्स कोलेज,
वालिया (गुजरात, भारत)
E-mail: spatel28473@gmail.com

DOI No. 03.2021-11278686 DOI Link :: https://doi-ds.org/doilink/03.2026-56291146/IRJHIS2603039

सारांश (Abstract):

आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता का प्राचीनतम संवाहक रहा है, किंतु आधुनिक विकास, औद्योगीकरण, उपनिवेशवाद और राज्य-नीतियों के कारण यह समाज निरंतर विस्थापन, शोषण और सांस्कृतिक विघटन की पीड़ा झेलता रहा है। हिंदी कविता ने आदिवासी जीवन की इस पीड़ा को संवेदनशीलता, प्रतिरोध और मानवीय करुणा के साथ स्वर दिया है। समकालीन समय में यह काव्यात्मक अभिव्यक्ति केवल साहित्य तक सीमित न रहकर दृश्य माध्यमों—जैसे सिनेमा, डॉक्यूमेंट्री, नाटक, चित्रकला और डिजिटल मीडिया—को भी गहराई से प्रभावित कर रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र में हिंदी कविता में चित्रित आदिवासी पीड़ा के विविध आयामों का विश्लेषण करते हुए यह अध्ययन किया गया है कि किस प्रकार ये काव्यात्मक संवेदनाएँ दृश्य माध्यमों में रूपांतरित होकर सामाजिक चेतना, प्रतिरोध और विमर्श को विस्तार देती हैं।

***मुख्य शब्द** : हिंदी कविता, आदिवासी पीड़ा, दृश्य माध्यम, विस्थापन, सांस्कृतिक अस्मिता, प्रतिरोध*

1. प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श अपेक्षाकृत नया होते हुए भी अत्यंत सशक्त और संवेदनशील क्षेत्र है। आदिवासी समाज प्रकृति के साथ सहजीवी संबंध, सामूहिक जीवन-शैली और मौखिक परंपराओं के लिए जाना जाता है। किंतु आधुनिक राज्य-व्यवस्था, खनन, बांध परियोजनाओं और वन-नीतियों ने आदिवासी समाज को उसके मूल से उखाड़ने का कार्य किया है।

हिंदी कविता ने इस पीड़ा को केवल करुणा के रूप में नहीं, बल्कि प्रतिरोध और चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। आगे चलकर यही काव्यात्मक चेतना दृश्य माध्यमों में सामाजिक यथार्थ के प्रभावी चित्रण का आधार बनी।

2. आदिवासी पीड़ा : अवधारणा और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि -

आदिवासी पीड़ा बहुआयामी है—

आर्थिक शोषण

भूमि और जंगल से विस्थापन

सांस्कृतिक अस्मिता का संकट

राजनीतिक हाशियाकरण

औपनिवेशिक काल में वन अधिनियमों और स्वतंत्रता के बाद की विकास-नीतियों ने आदिवासियों को "विकास-विरोधी" के रूप में प्रस्तुत किया। इस ऐतिहासिक अन्याय की छाया हिंदी कविता में तीव्रता से दिखाई देती है।

3. हिंदी कविता में आदिवासी पीड़ा का चित्रण :

3.1 प्रारंभिक स्वर :

प्रारंभिक हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन का उल्लेख सीमित और बाह्य दृष्टि से हुआ। आदिवासी पात्र लोक-जीवन या प्रकृति के सहायक रूप में चित्रित हुए।

3.2 समकालीन हिंदी कविता :

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन स्वर-विहीन नहीं, बल्कि स्वर-संपन्न रूप में सामने आता है।

(क) केदारनाथ सिंह

केदारनाथ सिंह की कविताओं में भूमि, जंगल और मनुष्य का संबंध आदिवासी चेतना से जुड़ता है। उनकी कविता में प्रकृति केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि पीड़ित समुदाय की सहचरी है।

(ख) रमाशंकर यादव 'विद्रोही'

विद्रोही की कविताएँ सत्ता और शोषण के विरुद्ध आदिवासी संघर्ष की आवाज़ बनती हैं। उनकी कविता में क्रोध और प्रतिरोध स्पष्ट है।

(ग) अनुज लुगुन

आदिवासी कवि अनुज लुगुन की कविताएँ भीतर से उपजे अनुभवों का दस्तावेज हैं। वे लिखते हैं—

"हमारी जमीन पर

हमसे पूछा नहीं गया

कि हमें उजड़ना है या नहीं।"

यह पंक्तियाँ आदिवासी पीड़ा की केन्द्रीय संवेदना को उद्घाटित करती हैं।

अनुज लुगुन आदिवासी कविता के एक महत्त्वपूर्ण कवि हैं। उनकी कविताएँ ज्यादा संख्या में प्रकाशित नहीं हुई हैं परन्तु जितनी भी कविताएँ सामने आयी हैं उनसे उनकी सजग संवेदनशील प्रश्नाकुल प्रतिरोधी कवि-संवेदना का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। "पूँजीवादी विकास-प्रक्रिया से पैदा हुए अमानवीय-विस्थापन, आदिवासी राजनीति के बुर्जुआकरण, धर्मांतरण की राजनीति जैसे

सवालों को एक साथ उठाते हुए वे हमारे समय में आदिवासियों द्वारा अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए किये जा रहे प्रयासों को 'अघोषित उलगुलान' की संज्ञा देते हैं। पूँजीवादी लूट-तंत्र में यह उलगुलान उन साधारण और बेबस आदिवासियों द्वारा लड़ा जा रहा है..

कंक्रीट से दबी पगडंडी की तरह/दबी रह जाती है जिनके जीवन

की पदचाप/बिल्कुल मौन।"[1]

आदिवासी जीवन को महादेव टोप्पो की 'त्रासदी' शीर्षक कविता में खूबसूरत ढंग से प्रस्तुत किया गया है-

"इस देश में पैदा होने का/मतलब क्या है/जानते हो भाई?

नहीं?/देश में पैदा होने का मतलब है/ आदमी का

जातियों में बँट जाना/और गलती से अगर तुम हो गए पैदा जंगल में/

तो तुम कहलाओगे/आदिवासी-वनवासी-गिरीजन वगैरह-वगैरह/

आदमी तो कम से कम कहलाओगे नहीं।"[2]

(महादेव टोप्पो की 'त्रासदी' शीर्षक कविता से, आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी, संपादक-रमणिका गुप्ता, पृ. 49)

4. आदिवासी पीड़ा के प्रमुख काव्यात्मक आयाम :

4.1 विस्थापन :

आदिवासी कवयित्रियों में ग्रेस कुजूर की कविताएँ विद्रोह की ज्वालाग्नि उगलती हैं। हजारों वर्षों के अपने प्राकृतिक आवास जंगल को उजड़ते देख उनकी वाणी कह उठती है-

"हे संगी/क्यों घूमते हो/झुलाते हुए खाली गुलेल/....../

क्या तुम्हें अपनी धरती की/सेंधमारी सुनाई नहीं दे रही?/क्या

अब भी निहारते हो/अपने को/दामोदर और स्वर्ण रेखा के/कालेजल

में/किसने की है चोरी/भिनसरिया में ठेकी के संगीत की/

और उखाड़ी है किसने/आजी के जाने की कील?/ 'पुटुस' तक को/

उखाड़ कर ले जाएँगे लोग/और धन/तुम खोजोगे उसकी बची

हुई जड़ों में/अपना झारखंड/हंडिया और दारू से सींचकर/क्या किसी ने उगाया है-/कोई जंगल?"[3]

जंगल की रक्षा से ही आदिवासियों का अस्तित्व बचा रह सकता है। उनके पूर्वजों ने हजारों वर्षों से अपने साथ जंगल को और जंगल के साथ अपने को सुरक्षित रखा किन्तु अब दोनों के अस्तित्व का प्रश्न निर्माण हो गया है, इस कारण ग्रेस कुजूर आदिवासी नवयुवकों को ललकारते हुए कहती हैं-

"तानों अपना तरकस।

नहीं हुआ बोथरा अब तक

बिरसा आवा का तीर

सूरज के लाल 'गोढ़ा' को

गला दो अपनी हथेलियों की

गर्मी से।"[4]

भूमंडलीकरण के इस दौर में आदिवासियों की स्थिति ना घर की ना घाट की हो गई है। एक ओर भारत सरकार के सुनहरे सपने और दूसरी ओर अपनी मुठ्ठी से खिसकती जमीन के बीच यह पिसते जा रहे हैं। वामन शेलके आदिवासी की इस स्थिति को अपनी कविता में इस प्रकार दर्शाते हैं-

"सच्चा आदिवासी

कटी पतंग की तरह भटक रहा है.........

कहते हैं हमारा देश

इक्कीसवीं सदी की ओर बढ़ रहा है।"[5]

बांध, खदान और उद्योग आदिवासी जीवन के सबसे बड़े शत्रु के रूप में कविता में उभरते हैं।

आदिवासी स्त्रियों की पीड़ा का बहुत ही सुन्दर तथा बेबाक वर्णन निर्मला पुतुल की कविताओं में दिखाई पड़ता है। "आदिवासी लड़की की पीड़ा को मुखर करती हुई निर्मला पुतुल कहती हैं कि कोई भी आदिवासी लड़की किसी शहरी लड़के से ब्याहना पसंद नहीं करती, इसके कई कारण हैं- जैसे वह शहरों में बसता है, बाँसुरी की धुन से अपरिचित है, घर के सामने आँगन नहीं आदि-आदि पर इन सबमें एक कारण अहम है- जो उसकी दशा और मनोदशा की कहानी कह सकता है-

"बापू! मुझे उतनी दूर मत ब्याहना

वहाँ मुझे मिलने आने की खातिर

घर की बकरियाँ बेचनी पड़े तुम्हें।"[6]

इतना ही नहीं शहरी लोगों की मानसिकता को बेनकाब करती हुई निर्मला पुतुल लिखती हैं- "ये इनके कालेपन से घृणा करते हैं, अनपढ़ होने पर व्यंग्य करते हैं, भाषा का मजाक उड़ाते हैं, हिकारत से देखते हैं, उनके हाथों से पानी नहीं पीते हैं, उनकी नजरों में इनका सब कुछ अप्रिय है किन्तु-

प्रिय है तो बस मेरे पसीने से पुष्ट हुए अनाज के दाने,

जंगल के फूल, फल, लकड़ियाँ

खेतों में उगी सब्जियाँ/घर की मुर्गियाँ

उन्हें प्रिय है

मेरी गदराई देह/मेरी मांस प्रिय है उन्हें।"[7]

प्रत्येक समाज को आगे बढ़ने के लिए केवल बाहरी बुराइयों से हीं नहीं लड़ना पड़ता बल्कि उसे अपने अन्दर की बुराईयों

से भी लड़ना होता है। आदिवासी समाज भी इन बुराईयों से लड़ रहा है। आदिवासियों की जीवन चर्या में शराब से होने वाले दुष्परिणाम भी यहाँ व्यक्त किए गए हैं, अपने ही समाज के प्रधान या मुखिया की प्रवृत्ति को व्यक्त करती हुई निर्मला पुतुल कहती हैं-

"कैसा बिकाऊ है

तुम्हारी बस्ती का प्रधान

जो सिर्फ एक बोतल विदेशी दारू में

रख देता है

पूरे गाँव को गिरवी

और ले जाता है

लकड़ियों के गठ्ठर की तरह

लादकर अपनी गाड़ियों में

तुम्हारी लड़कियों को

हजार पाँच-सौ

हथेलियों पर रखकर

....

कहाँ गया वह परदेशी

जो शादी का ढ़ोंग रचाकर

तुम्हारे हीं घर में

तुम्हारी बहन के साथ

साल-दो-साल रहकर अचानक गायब हो गया?" [8]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आदिवासी जन-जीवन को हिन्दी कविता में महत्वपूर्ण स्थान मिला है। आज आदिवासियों ने अपनी मुक्ति के लिए अपने पारम्परिक हथियार तीर और कमान को छोड़कर कलम उठा ली है। आगे आने वाला समय इस समाज का होगा। आदिवासी समाज भी अन्य समाज की भाँति अपनी संस्कृति एवं परम्पराओं को सुरक्षित रखते हुए उन्नति के मार्ग पर निरंतर अग्रसर है।

4.2 सांस्कृतिक विघटन :

भाषा, पर्व, नृत्य और लोकगीत—सब पर संकट कविता में बार-बार व्यक्त होता है।

4.3 प्रकृति और मनुष्य का संबंध :

हिंदी कविता में आदिवासी जीवन प्रकृति के साथ तादात्म्य में चित्रित है, जो आधुनिक सभ्यता के लिए एक वैकल्पिक दृष्टि प्रस्तुत करता है।

5. दृश्य माध्यम : अवधारणा और महत्व :

दृश्य माध्यम—सिनेमा, रंगमंच, चित्रकला, फोटोग्राफी और डिजिटल मीडिया—संवेदनाओं को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत करने की शक्ति रखते हैं। हिंदी कविता की भावात्मक तीव्रता दृश्य माध्यमों को वैचारिक आधार प्रदान करती है।

6. हिंदी कविता से दृश्य माध्यमों तक : अंतर्संबंध :

6.1 सिनेमा :

आदिवासी समुदाय के संघर्ष, संस्कृति और जीवन पर आधारित प्रमुख हिंदी और क्षेत्रीय फिल्में उनके अधिकारों व सामाजिक स्थिति को दर्शाती हैं। प्रमुख फिल्मों में 'जय भीम' (2021), 'शेरनी' (2021), 'जंगल क्राई' (2022), 'न्यूटन' (2017) और 'रेड अलर्ट' (2009) शामिल हैं। ये फिल्में मुख्य रूप से उनके विस्थापन, नक्सलवाद, पुलिसिया दमन और वन संरक्षण में उनकी भूमिका को रेखांकित करती हैं।

आदिवासी वर्ग पर आधारित प्रमुख फिल्में:

जय भीम (2021): यह फिल्म एक आदिवासी परिवार के संघर्ष और उनके अधिकारों की लड़ाई को दर्शाती है, जहाँ पुलिस हिरासत में एक आदिवासी व्यक्ति की मौत के बाद न्याय की मांग की जाती है।

शेरनी (2021): विद्या बालन अभिनीत यह फिल्म इंसान और जानवरों के संघर्ष के साथ-साथ वन संरक्षण में आदिवासी समुदाय के योगदान को दिखाती है।

जंगल क्राई (2022): यह एक सच्ची कहानी पर आधारित है, जिसमें ओडिशा के आदिवासी बच्चे रग्बी खेल में अपनी प्रतिभा दिखाते हैं।

न्यूटन (2017): राजकुमार राव अभिनीत यह फिल्म छत्तीसगढ़ के नक्सल प्रभावित आदिवासी इलाकों में चुनाव कराने की चुनौती पर प्रकाश डालती है।

रेड अलर्ट (2009) / चक्रव्यूह (2012): ये फिल्में नक्सलवाद के इर्द-गिर्द घूमती हैं और आदिवासियों को व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करते हुए दिखाती हैं।

आरआरआर (RRR - 2022): इस बड़े बजट की फिल्म में आदिवासी समुदायों के गौरव और उनके अधिकारों के लिए संघर्ष को प्रमुखता से दिखाया गया है।

भूखा (1989): उड़िया भाषा की यह क्लासिक फिल्म पारंपरिक आदिवासी मूल्यों और आधुनिकता के बीच के संघर्ष को दर्शाती है।

इन फिल्मों के अलावा, आदिवासी फिल्म फेस्टिवल में पलाश (झारखंड) और हेंडे सोना और ब्लैक गोल्ड जैसी फिल्में भी उनके लोकजीवन को सामने लाती हैं।

6.2 डॉक्यूमेंट्री :

डॉक्यूमेंट्री फ़िल्मों में हिंदी कविता की पंक्तियाँ कथावाचक स्वर के रूप में प्रयुक्त होती हैं, जो आदिवासी पीड़ा को भावनात्मक

गहराई देती हैं।

6.3 रंगमंच :

नाटक और नुक्कड़ नाटक हिंदी कविता के संवादात्मक स्वर को अपनाकर आदिवासी संघर्ष को मंच पर जीवंत करते हैं।

6.4 चित्रकला और फोटोग्राफी :

आदिवासी पीड़ा पर आधारित चित्र और फोटोग्राफ कविता की दृश्यात्मक व्याख्या प्रतीत होते हैं।

7. दृश्य माध्यमों में आदिवासी पीड़ा की अभिव्यक्ति :

दृश्य माध्यमों में आदिवासी पीड़ा— करुणा नहीं, प्रतिरोध बनती है, मौन नहीं, संवाद बनती है, व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक अनुभव बनती है

यह रूपांतरण हिंदी कविता की वैचारिक शक्ति के कारण संभव हुआ है।

8. सामाजिक प्रभाव और चेतना :

हिंदी कविता और दृश्य माध्यमों के समन्वय से—

आदिवासी मुद्दे मुख्यधारा में आए, सामाजिक आंदोलनों को वैचारिक समर्थन मिला, नई पीढ़ी में संवेदनशीलता विकसित हुई।

9. निष्कर्ष :

हिंदी कविता में चित्रित आदिवासी पीड़ा केवल साहित्यिक संवेदना नहीं, बल्कि सामाजिक प्रतिरोध का स्वर है। दृश्य माध्यमों ने इस स्वर को व्यापक समाज तक पहुँचाया है। कविता और दृश्य माध्यमों का यह अंतर्संबंध आदिवासी विमर्श को सशक्त बनाता है और भारतीय लोकतंत्र को अधिक मानवीय बनाने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ सूची (References) :

1. आदिवासी विमर्श और हिन्दी साहित्य, कुमार विरेन्द्र, पृ. 206
2. आदिवासी साहित्य: विविध आयाम, सम्पादक डॉ. रमेश संभाजी कुरे/डॉ. मालती घोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण अनंतराव शिंदे, पृ. 23
3. आदिवासी साहित्य: विविध आयाम, सम्पादक डॉ. रमेश संभाजी कुरे/डॉ. मालती घोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण अनंतराव शिंदे, पृ. 36-37
4. आदिवासी साहित्य: विविध आयाम, सम्पादक डॉ. रमेश संभाजी कुरे/डॉ. मालती घोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण अनंतराव शिंदे, पृ. 37
5. आदिवासी साहित्य: विविध आयाम, सम्पादक डॉ. रमेश संभाजी कुरे/डॉ. मालती घोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण अनंतराव शिंदे, पृ. 41
6. इक्कीसवीं सदी की हिन्दी स्त्री कविता: आशय और अभिव्यक्ति, संपादक, संतोष टेलकीकर/डॉ. ज्योति मुंगल, पृ. 91
7. इक्कीसवीं सदी की हिन्दी स्त्री कविता: आशय और अभिव्यक्ति, संपादक, संतोष टेलकीकर/डॉ. ज्योति मुंगल, पृ. 91
8. आदिवासी साहित्य: विविध आयाम, सम्पादक डॉ. रमेश संभाजी कुरे/डॉ. मालती घोड़ोपंत शिंदे/प्राचार्य प्रवीण अनंतराव शिंदे, पृ. 40-41